ISSN No. : 2394-0344 **REMARKING :** VOL-1 * ISSUE-5*October-2014

अज्ञेय की काव्य दृष्टि और सृष्टि

Dear Author,
Please provide **ABSTRACT, KEY WORDS and REFERENCES must be in MLA pattern**, for this paper with the proof urgently otherwise your paper may be transfer for next issues untill above are recieved.

Please Send one passport size photo in our mail id

अनिल कुमार उपाध्याय
Desig.
Deptt.
College.
City.

Please Fill Above Deatail

सारांश

मुख्य शब्द : **Please Add Some Keywords**

प्रस्तावना

अज्ञेय की काव्य सृष्टि

आधुनिक काव्य जगत के 'शलाका पुरूष' 'अज्ञेय' का काव्य फलक अत्यंत विस्तृत है अज्ञेय को काव्य जगत में जितनी ख्याति मिली उतनी उपन्यासकार और निबंधकार या कहानीकार के रूप में नहीं। प्रारम्भिक दौर की रचनाओं में भग्नदूत एंव चिन्ता में अटपटी भाषा का प्रयोग एवं रोमनी–बोध के दर्शन होते है। 'इत्यलम्' में अज्ञेय की सौंदर्य–चेतना का अंकुरण और सन् 1949 से 1957 तक प्रकाशित 'हरी घास पर क्षण भर' से 'इन्द्र धनुष रौंदे हुए ये' तक इस सौंदर्य चेतना का विकासकाल है। सन् 1959 में प्रकाशित 'अरी ओ करूणा प्रभामय में में अज्ञेय की सौदंर्य चेतना प्रेमानुभूति सामाजिक अनुभूति और आध्यात्मिक अनुभूति में प्रतिफलित होती है। यद्यपि यह रचनाएँ बौद्धिकता से युक्त हैं पर इनमें आंतरिक सहजता सरलता भी दिखायी देती है।

सन् 1961 में प्रकाशित 'आंगन के पार द्वार' अज्ञेय की सौदंर्य–चेतना का एक विशिष्ट पड़ाव है जहाँ से यह उर्ध्वगामी होकर आध्यात्मिक जगत की यात्रा करती है। डॉ. रामविलास शर्मा इन रचनाओं को ''नव रहस्यवाद'' की संज्ञा देते है।[1] 'कितनी नावों में कितनी बार' 'सागर मुद्रा', 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ', 'महावृक्ष के नीचे', 'नदी की बांक पर छाया' और 'ऐसा कोई घर आपने देखा है 'आदि काव्य संकलनों में अज्ञेय की सौदंर्य चेतना लोक का स्पर्श करती हुई आध्यात्मिक शिखर तक पहुॅचती है। इसमें सांस्कृतिक बोध, इतिहास बोध और सामाजिक बोध एक साथ देखे जा सकते है। इस सौंदर्य–चेतना की यात्रा में चुनौतियों को झेलता अपनी अस्मिता बोध प्राप्त करता है। कवि अपनी अंतिम रचना 'ऐसा कोई घर आपने देखा है', के माध्यम से सौदंर्य के अनेक–आयाम खोलता है। यह अज्ञेय जैसे समर्थ कलाकार के ही द्वारा संभव है। जहाँ जीवन है वहाँ चेतना है बिना जीवन के चेतना का अस्तित्व कहाँ है। जीवन है तो सौदंर्य है। जीवन और सौदंर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कवि प्रेम की आशा–निराशा के संघर्ष में निरंतर रत रहना चाहता है।

''पर मैं अखिल विश्व की पीड़ा संचित कर रहा हूँ
क्योंकि मैं जीवन का कवि हूँ।'' –2

कवि की सौदंर्य चेतना का एक आयाम राष्ट्र प्रेम भी है। 'बन्दी स्वप्न' कविता में यही राष्ट्र प्रेम उमड़ आया है जिसमें आन्दोलन के विफल होने के पीड़ा भी है और लक्ष्य के लिए किए गये बलिदान का संतोष भी, कवि व्यक्तिगत जीवन में क्रान्तिकारी भी रहा और उसे बंदी भी बनाया गया था। अंखड ज्योति की यह पंक्तियॉ उनके आक्रोश की व्यंजना इस प्रकार करती है –

'' मिटना स्वयं बनाना जग को, जलना स्वयं जिलाना जग को।
शोणित तक से सींच स्वच्छ रखना उस स्वतंत्रता के मग को''।। –3

सुनो तुम्हे ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का मान, रक्त स्नात यह मेरा साथी, मेरी दुखिया भारत मां है आदि कवि की देश–प्रेम सम्बन्धी रचनाएँ है जिनमें कवि का सौन्दर्य बोध अपने अंह तक सीमित है। आगे चलकर यही अंह आत्मान्वेषण और सत्यान्वेषण में पर्यवसित होता है।'हरी घार पर क्षण भर', 'बाबरा अहेरी' और इन्द्रधनुश रौंदे हुए ये, में कवि ऐन्द्रिय बोध से भावबोध एंव सामाजिक बोध

तक पहुँच जाता है और उसका अहं भी धीरे–धीरे तिरोहित होने लगता है। 'हरी घार पर क्षण भर' में कवि नगरीकरण के प्रसार से सिमटती हरीतिमा में शेष रही घास का स्मरण करता है। मनुष्य के यंत्र में तब्दील हो जाने से आपाधापी और व्यस्तता ने प्रकृति– निरीक्षण का सुख भी छीन लिया है। यह व्यस्तता मनुष्य के जीवन की सरसता को छीन रही है। शुष्क होते मनुष्य और उसके कृत्रिम जीवन में मूल्यहीनता और मुक्त स्निग्ध, स्वच्द सरस घास के अन्तर्विरोध को उभारता है –

" जिसके खुले निमंत्रण केवल जग ने सदा उसे रौंदा है। और वह नहीं बोली,नही सुने हम वह नगरी के नागरिकों से जिनकी भाषा में / अतिचिकनाई है साबुन की किन्तु नहीं है/ करूणा।"– 4

यहाँ प्रकृति से निरन्तर दूर होते मानव और प्रेम की परिवर्तित संवेदना को अभिव्यक्ति दी गयी है।

आत्मान्वेषण और कवि के अहं का द्वन्द है। वह आश्वत करना चाहता है कि उसका अहं उसके सामाजिक दायित्व निर्वाह में बाधक नहीं है। 'नदी के द्वीप' में जहॉ द्वीप (व्यक्ति) का अस्तित्व बनाये रखने के लिए जननी नदी (समाज) की कामना है। पूर्ण विसर्जन वहाँ भी नहीं है, किन्तु व्यक्ति बाह्य सत्ता का बड़े आदर के साथ स्वीकार है। यहाँ माँ नदी एवं भूखण्ड पितर है। कवि इन दोनों को उनका प्राप्य देने में संकोच नहीं करेगा। अज्ञेय का 'बाबरा अहेरी' रूपी सूर्य से 'आत्मनिवेदन' है कि वह मन की गहराइयों में छिपे कलुष को मांज दे। यहाँ कवि का 'स्व' विराट् सत्ता के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है यही आत्म चेतना का परिष्कार है –

"छोटी–छोटी चिड़िया/मंझोले परेवे बड़े–बड़े पंखी/डैनों वाले डील वाले डौल के बेडौल उड़ने जहाज बावरे अहेरी रे कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है।" –5

जहाँ एक और आत्म शुद्धि की कामना है वहाँ दूसरी ओर पर का स्वीकार है जो कालान्तर में आत्मदान का केन्द्र बनता है। व्यक्तित्व की इकाई की रक्षा का भाव अभी कवि के मन में है। वह उससे पूरी तरह मुक्त नहीं है पर अब वह समाज के लिए उत्सर्ग करने में तनिक भी संकोच नहीं करता। वह व्यक्तित्व रूपी दीप को समाज के अन्य दीपकों की जमात में रखना चाहता है ताकि औरों के साथ मिलकर उसका प्रकाश वृद्धि पाये

"यह दीप, अकेला स्नेह भरा है गर्व भर मदमाता,
पर इसको भी पंक्ति को दे दो।" –6

कवि जीवन में मृत्यु को एक सत्य के रूप में स्वीकार करता है –

उभरने के लिए जीवन यद्यपि मरने के लिए
सिहर झरने के लिए।" –7

यहाँ महाकाल की अवधारणा है जो जीवन में भय, संदेह को जन्म नहीं देती अपितु जीवन में आस्था पैदा करती है सभी कुछ परिवर्तनशील हैं क्षण–प्रतिक्षण होने वाला परिवर्तन ही सौंदर्य है – 'मरण धर्मा है सभी कुछ/ किन्तु फिर भी बहो मीठी हवा/कवि मृत्यु को अनिवार्य सत्य के रूप में स्वीकार कर उसे शिवता–सुन्दरता देने की बात कहता है –

" क्रमशः मृत्युः मृत्यु भी सत्य ही है, उसे हम छोड़ नहीं सकते। हाँ शिवता, और सुन्दरता हम उसे दे सकते है किन्तु अभी जीवनः अन्तहीन तपस्या जिसे हम मुँह मोड़ नहीं सकते।" –8

यहाँ कवि का अनास्थावादी स्वर नहीं, पलायन नहीं, बल्कि कालबोध जनित गहनता एवं व्यापकता का बीज जीवन बोध का वटवृक्ष बन कर उभरता है।

कवि अपने व्यापक परिवेश में आ जाता है वह मानव को मानव से जोड़ने का सेतु बनना चाहता है।

"जो मानव को एक करता है समूह का अनुभव जिनकी मेहराबें है। और जन जीवन की अजस्र प्रवाहमयी नदी नीचे से बहती है।" –9

कवि अपने 'खोने को पाना' मानता है। विलय, समर्पण ही उपलब्धि बन जाता है। इस प्रकार वह विराट मानव तक अपनी यात्रा करता है –

" क्योंकि तपस्या/ चमक नही है वह है गलना/ गलकर मिट जाना–मिल जाना पाना है।" –10

उपयोगिता और उपभोक्ता वादी संस्कृति ने मनुष्य को इतना बौना बना दिया है कि वह आकाश की ओर निहार कर अपनी मुक्ति का ऐहसास नहीं करता, बल्कि उसका स्वार्थ धारित्री के श्रृंगार को भी उजाड़ देता है –

"पक्षियों की बीटों का क्या उपयोग होगा, इसी चिन्ता में जमीन को कुरेदते –ऊपर का मुक्त–मुक्त–मुक्त आकाश नहीं ताकोगे?" –11

व्यथा मनुश्य को मनुष्यता की भूमि पर ला खड़ा करती है। यही व्यथा मनुष्य को दूसरों की मुक्ति का ऐहसास कराती है –

" दुःख सबको मांजता है / और चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु जिनको मांजता है उन्हें सीख देता है कि सबको मुक्त रखें"। –12

प्रकृति की सूक्ष्म निरीक्षण वाली छायावादी कवि पंत की परम्परा को आगे बढ़ाया है दूर्वाचल शरद, कतकी पूनो, क्वार की बयार, सागर तट उषाकाल की नैसर्गिक भोर, पार्क की बेंच, कवि की विकसित एवं प्रौढ़ मानसिकता का परिचय देते हैं, अपने अहं से मुक्त होकर ही प्रगति की विराट सत्ता का अनुभव किया जा सकता है। प्रकृति परक कविताओं में प्रकृति के प्रति परिवर्तित भाव बोध की अभिव्यक्ति के स्तर पर हम उन्हे पंत के निकट पाते है। कवि छायावादी सौंदर्य–बोध से एक कदम आगे लोक संस्कृति के निकट पहुँच कर बबूल, कचनार, पलाश, बुरूंस, पीपल, नीम, टेसू, शाली, नरसल, चीड़ पतझर, षेफाली टिटिहरी झाउ (घास) का चित्रण यथार्थ धरातल पर करता है। अज्ञेय का काव्य प्रकृति का विस्तृत एवं रम्य फलक है। प्रकृति की नाना छवियाँ, नाना मुद्राएँ इसमें विराजमान है।

अज्ञेय के काव्य में प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन अलंकरण उपदेशात्मक प्रतीकात्मक और मानवीकृत, इन सभी रूपों में चित्रण हुआ है। प्रकृति को प्रतीकात्मक और उद्दीपन रूप में चित्रण करना कवि को अत्यधिक प्रिय है।

कवि परम्परा से विच्छिन्न होकर किसी नये मार्ग का अन्वेषण नहीं करता बल्कि उन्ही के मध्य से गुजर कर नवीन दृष्टि और क्षमता का परिचय देता हुआ 'नयी राह' के अन्वेषण में सफल होता है। प्रकृति के इस चित्र को देखते ही बनता है यथा –

"बादलों का हाशिया है आस–पास बीच लिखी पांत काली बिजली की कुंजो की डार, कि अषाढ़ की निशानी।" –13

प्रातः काल की ओस की टप–टप करती बूंदों और पहाडी कौए की बेसुरी आवाज हाक्। हाक्। हाक्। द्वारा रूपायित किया है –

भोर बेला। सिंची छत से ओस की टप टप। पहाडी काक
की विजन को पकड़ती सी कलान्त बेसुर–डाक हाक्।
हाक्। हाक्। –14

इस प्रकार एक समूचा ध्वनि बिम्ब भी यहाँ बनता है। हाक् हाक् ध्वनि के मध्य अल्प विराम कौए की गति को भी मूर्त करता है। यही गत्यात्मकता कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय देती है।

प्रकृति से नये उपमान ग्रहण करना कवि का नवीनता के प्रति आग्रह को दर्शाता है कनक चम्पा की कली का अपमान देह के लिये, भोर के ओस की बूंदे नेत्र के लिये और दाड़िम पुष्प होंठो के लिये प्रयुक्त हुआ है। रूप के लिये दोलती कलंगी, हरी बिछली घास के उपमान दिये है। अज्ञेय दोलती कलगी बाजरे की और हरी बिछली घास से नायिका के रूप की ताजगी, कमनीयता सहजता सरलता, तरलता की ओर इँगित करते है।

प्रकृति के असीम विस्तार की भाँति कवि का प्रकृतिपरक प्रतीक संसार भी विस्तृत है कीर हारिल, कुकर दूब, सागर सीप किरण मछली द्वीप, नदी, रेत आदि को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। नित्य प्रति के परिचित दृश्यों में घटित परिवर्तन प्रकृति का सिमटता दायरा और औघोगिकता के बढ़ने से प्रदूषित होते पर्यावरण के प्रति कवि न केवल चिंतित है अपितु व्यथित भी है –

''सबेरे–सबेरे नहीं आती बुलबुल/न श्याम सुरीली न
फुदकी, न दंहगल/ सुनाती है बोली नहीं फूल सुंघनी/
पतेना पहेली लगाती है फेरे जैसे ही जागा कहीं पर
अभागा अड़ड़ाता है कागा कांय। कांय। कांय।'' –15

राजस्थान में गर्म प्रदेश का प्रभाव होने के कारण चटक रंगो का प्रयोग किया जाता है मरूथल की गर्मी को छोटे–छोटे चित्र खण्डों के द्वारा एक समूचे गाँव का चित्र फलक पर उभर आता है। यह गाँव की प्रकृति और परिवेश का परिचय ही नहीं देता अपितु समूची ग्राम–संस्कृति को ला खड़ा करता है –

''सरसों का फूलना हिरनों की कूद छिन चपल, छिन अधर
में टंकी सी चीलों की उड़ान, चिरौटों कौओं की ढिठाइयाँ
सरसों की ध्यान मुद्रा बदलाये ताल के सीसे पर अंकी सी
वन– तुलसी की तीखी गंध ताजे लीपे आंगनो में गोयठों
पर देर तक गरमाये गये दूध की घूंइली बांस,जेठ की
गोधूलि की घुटन में कोयल की कूक मेड़ों पर चली जाती
छाया खेतों से लौटती भटकी हुई तानें। पीतल तलें छोटे
दिवले की मनौती सी डरी सहमी लौं।'' –16

यहाँ पर सरसों, तुलसी, गोबर और दूध की घुंइली गंध से घ्राण–बिम्ब बनता है जो गाँव के सम्पूर्ण दृश्य को जीवन्त बना देता है। उसे साकार कर देता है। इस प्रकार कवि की चेतना के स्तर पर उसके अनेक सौदंर्य बोध सामने आते है।

अज्ञेय की काव्य–दृष्टि

सन् 1943 में अज्ञेय के सम्पादकत्व में तार सप्तक का प्रकाशन हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण घटना है ''इस तार सप्तक की योजना भी दिल्ली के जिस 'अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन (1942) के दौरान बनी वह वस्तुतः 'प्रगतिशील लेखक संध का ही आयोजन था।'' दूसरे तार सप्तक का प्रकाशन सन् 1951 मे एक तीसरे तार सप्तक का प्रकाशन सन् 1959 में हुआ। यूँ तो अज्ञेय का चौथा तार सप्तक भी सन् 1982 के आसपास आया पर यह प्रयास अज्ञेय ने 'तार सप्तक के माध्यम से 'प्रयोगवाद' को पुनर्जीवित करने के लिए किया। डॉ नामवर सिंह ने प्रयोगवाद की समाप्ति सन् 1959 में ही घोषित कर दी–''तार सप्तक के पुनर्मुद्रण के साथ नयी हिन्दी कविता का एक चक्र पूरा हो जाता है,वैसे इस दौर का अंत तीसरे सप्तक के साथ 1959 में पूरा हो गया।''–17

शायद अज्ञेय नहीं चाहते थे कि उन्हें किसी धारा, वर्ग विशेष, या सम्प्रदाय से जोड़ा जाये प्रथम तार सप्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा ''किन्तु इससे यह परिणाम न निकाला जाय कि ये कविता के किसी एक स्कूल के कवि हैं या कि साहित्य जगत के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक हैं। बल्कि उनके तो एकत्र होने के कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के सदस्य नहीं है किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं अभी राही है, राही नहीं राहों के अन्वेषी'' –18

अज्ञेय की यह साफगोई बहुत दूर तक काम न आयी, उन्हें इस धारा का न केवल प्रवर्तक घोषित किया गया अपितु इसे प्रयोगवाद नाम दे दिया गया। यद्यपि अज्ञेय जी के द्वारा दूसरे और तीसरे 'तार सप्तक' की भूमिकाओं में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि ''कोई कवि किसी से मतैक्य नहीं है, महत्वपूर्ण विषयों पर भी इन कवियों की राय अलग–अलग है। पर इस धारा को 'प्रयोग वाद नाम देने से आलोचकों को नहीं रोक सकें।

अज्ञेय जी दूसरे तार सप्तक की भूमिका में स्पष्ट करते है'' क्या ये रचनाएँ प्रयोगवादी है? क्या ये कवि किसी एक दल के है, किसी मतवाद राजनीतिक या साहित्यिक के पोषक है? प्रयोगवाद नाम के नये मतवाद के प्रवर्तन का दायित्व क्योंकि अनचाहे और अकारण ही हमारे मत्थे मढ़ दिया गया है।'' –19

आगें अज्ञेय कहते है – ''प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नही रहे नाही है। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है – जिस प्रकार कविता रूपी माध्यम को बरतते हुए आत्माभिव्यक्ति चाहने वाले कवि को अधिकार है उस माध्यम का अपनी आवश्यकतानुसार श्रेष्ठ उपयोग करे, उसी प्रकार आत्मा सत्य के अन्वेशी कवि को अन्वेशण के प्रयोग रूपी माध्यम का उपयोग करते समय उस माध्यम की विशेषताओं को परखने का भी अधिकार है।''

कवि के रूप में अज्ञेय कविता के रूप और भाव के क्षेत्र में प्रयोग को पाठक तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम, एवं दोहरा साधन मानते है पहला यह कि कवि जिस सत्य को संप्रेषित कर रहा है प्रयोग द्वारा उसे अच्छी तरह जान सकता है और अभिव्यक्त कर सकता है। वस्तु और शिल्प दोनों क्षेत्रों में 'प्रयोग' की फलदायी मानते हैं। केशव की कविता पर और उनके प्रयोग पर अज्ञेय रीझे हैं और प्रयोग के सूत्र भी उन्होंने केशव के काव्य से ग्रहण किये हैं। यह 'प्रयोग' अज्ञेय के काव्य–प्रतिमान के रूप में

हमारे सामने आता है। जिसका स्रोत केशव का काव्य है। अज्ञेय प्रयोग के लिये प्रयोग नही करते बल्कि काव्य में मानव स्तर के गहरे संधान के लिए इसे अपनाते हैं।

इसे 'प्रयोगवाद' नाम देने में समीक्षकों में व्यंग्य का भाव था इसके अतिरिक्त इस काव्य धारा को अहंवादी, कुण्ठावादी सेक्सवादी, 'क्षणवादी' फ्रायडवादी सार्त्रवादी व्यक्तिवादी आदि नामों से भी अंलकृत किया गया। जो बाद में इस काव्य की विशेषताओं का आधार बना। अज्ञेय के ऊपर फ्रायड सार्त्र और टी.एस. इलियट जैसे पाश्चात्य समीक्षक–दार्शनिकों का प्रभाव है। 'तार सप्तक' के अधिकांश कवियों के ऊपर इनकों प्रभाव परिलक्षित होता है। फ्रायड के मनोविज्ञान का पूरा प्रभाव अज्ञेय पर है। व्यक्ति की कुंठा इसी मनोविज्ञान के प्रभाव से चित्रित करने का प्रयास है।

कवि एवं सम्पादक अज्ञेय ने तार सप्तक के द्वितीय संस्करण के पुनश्च में काव्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है – ''काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःस्रत होते है। शब्द का ज्ञान–शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़–ही कृतिकार को कृति बनाती है। ध्वनि लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते है और इसी में विलय होते है।''

आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इसी परिभाषा के आधार पर कवि की काव्य भाषा को काव्य के प्रतिमान के रूप में स्वीकार करते हुए काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी ''कविता उत्कृष्टतम शब्दों का उत्कृष्टतम रूप है। डॉ. नामवर सिंह लिखते कि ''काव्य भावों का यह अंतिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार शेष रह जाता है जिसके सहारे कविता के आंतरिक संघठन को समझने की चेष्टा हो सकती है।

अज्ञेय के साहित्य चिन्तन के केन्द्र में भाषा की सृजनशीलता हैं सर्जक कलाकार के लिये शब्द साध्य है। कवि के सामने साधारणीकरण और सम्प्रेषण की समस्या है जो भाषा के माध्यम से होनी है। कवि शब्द चयन द्वारा अनुभूति सक्षम भाषा को रूप देता है। कवि जिस सघनता से अनुभव करता है। उसी सघनता से भाषा के द्वारा सम्प्रेषित करता है। अज्ञेय जी कहते है ''भाषा के विकास की एक अनिवार्य प्रक्रिया है। चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता चलता है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार की सृष्टि की समस्या बनी रहती है।

वह शब्दों को निरन्तर नया संस्कार देता चलता है। और वे संस्कार क्रमशः सार्वजनिक मानस में पैंठ कर ऐसे हो जाते है। कि उस रूप में कवि के काम के नही रहते।'' रूप का भाव में रूपान्तरण ही अज्ञेय को छायावादी कवियों से दूर करता है। ये कवि मनुष्य की चेतना से स्वतंत्र किसी भी वस्तु को स्वीकार नही करते। कवि अज्ञेय अपनी भूमिका में स्पष्ट करते है – जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है जब उस शब्द की समोत्तेजक शक्तियॉ समाप्त हो जाती है। उस अर्थ से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता हों जिससे पुनः राग का संचार हो पुनः रागात्मक सम्बन्ध स्थापित है। साधारणीकरण का अर्थ यही है।''

भाषा की मौलिकता सर्जनात्मकता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि कवि परम्परित अर्थ को तोड़े ताकि भाषा में लोंच बना रहे। अज्ञेय के शब्दों में ''भाषा की इस संकुचित होती हुई सार्थकता की कैंचुल उसमें नया अर्थ भर सकें। परम्परित और रूढ शब्दों को फोड़ कर उस पर जमीं काई को हटाकर उसमें नया अर्थ भर सकें।'' ऐसी मान्यता देकर अज्ञेय शब्द के अर्थ प्रतीक को नये रूप में शब्द को नया संस्कार देकर शब्दों की चमक वापस लौटाता है। यही काव्य भाषा है।

अज्ञेय के अनुसार ''भाषा प्रयोजनवर्ती और सूचनात्मक होती है।'' शब्द वही सार्थक है जो पूरे अनुभव को ऐसी पूर्णता में सम्प्रेषित करे जैसा कोई और शब्द न कर सके वह शब्द अनेक शब्दों की भीड़ में खोया रहता है, जब तक उससे साक्षात्कार न तो। अनेक शब्दों के बोझ से दबी आनुभूति अभिव्यक्त होने में असमर्थ रहती है। जब तक अनुभूति नही मुक्ति नहीं मुक्ति नहीं तो रचना करना मुश्किल हो जाता है।

कवि को विश्वास है कि इसी के अन्तराल से सार्थक शब्द मिलेगा और तब न केवल अनुभूति की सरस धार पाठक तक संचरित होगी, बल्कि अब वह उस शब्द को नयी गरिमा प्रदान करेगी, नया अर्थ देगी। कवि अपनी भाशा में शब्द से नये–नये अर्थ गढने का पक्षपाती है। कवि बिम्ब ग्रहण भी करे लेकिन उसी सीमा तक जब तक वह पाठक को बोझ न लगे। ये प्रतीक और शब्द घिस जाने शब्द अपनी अर्थसत्ता खो बैठे कवि को इस अर्थ सत्ता को वापस लाने अथवा नये अर्थ को सृष्टि करने के लिए मॉजना होगा। अगर कवि ऐसा करने में समर्थ रहता है तो वह अपनी बात पाठक तक पहुँचा सकेगा कवि कहता है –

> **"**ये उपमान मैले हो गये है। देवता इन प्रतीकों के कर
> गये है। कूच कभी बासन अधिक धिसने से मुलम्मा छूट
> जाता है**"**

सम्प्रेशण शब्द का सर्वाधिक प्रयोगवाद में हुआ है। काव्य भाषा के संदर्भ में सम्प्रेषण पर बल इसलिए दिया गया है ताकि उसे किस प्रकार सम्प्रेषित किया जाये कि वह ज्यों का त्यों सम्प्रेषित हो जाये काव्य में सम्प्रेषण की स्वीकृति कवि और पाठक के रिश्ते को और भी अधिक नये रूप में प्रस्तुत करती है। जिससे एक विशेष प्रकार की निर्वैयक्तिकता आ जाती है। कविता में सीधी अभिव्यक्ति सतही होती है। इसीलिए कविता को कूट भाषा कहा गया है। पाठक साथ रहे या अभिव्यक्ति को पाठक तक पहुँचना बहुत कठिन लगता है। कविता यदि इकहरी होती तो उसका प्रकट अर्थ पर्याप्त था। पर कविता की भाषा ऐंठन वाली एवं बहुस्तरीय होती है। जिसमें अभीष्ट अर्थ की व्यंजना प्रतीकों संकेतों में होती है।

एक स्थल पर (तार सप्तक की भूमिका) में अज्ञेय कहते है – शब्दों का अर्थ–गर्भ प्रयोग नही, अर्थ गर्भ मौन का भी उपयोग रहता है।'' शब्दों के बीच का यह शब्दहीन अन्तराल था मौन भी पूरी अर्थवत्ता के साथ सम्प्रेषित हो सके इसी की खोज कवि अज्ञेय के अमीष्ट की ओर इंगित करता है। अब कवि मौन की मांग करता है –

"मुझे शब्द दो शब्द / कि मैं कविता कह पाऊ एक शब्द वह जो न जिह्वा पर लाऊँ। किन्तु दर्द मेरे से जो छोटा पड़ता हो। और तीसराः खरा धातु पर जिसको पाकर पूछूँ क्या न बिना इसके भी काम चलेगा। और मौन रह जाऊँ।

इस अर्थ गर्भ की खोज, काव्यजगत में कवि अज्ञेय की अनूठी खोज है। अज्ञेय ने कविता मे राग तत्व को प्रधान माना है। किन्तु यहॉ भी रूढि पालन का विरोध किया है। वे मानते हैं कि हमारे मूल राग वही रहने पर भी रागात्मक सम्बन्धों की प्रणालियों बदल गयी है। कवि नयी कविता युग में उठायी गयी सम्प्रेषण के आभासित अभाव को कविता के साथ जोड़ते है। परम्परित छंदो के रूढ बन्धनों का परित्याग भी युगीन अनिवार्यता मानते है। कविता में पहले वाचिक लय की अनिवार्यता थी पर मुद्रण ने यह स्थिति बदल दी है।

आज पाठक को संबोधित करने वाली प्रणाली भी बदल गयी है। प्रयोगवाद की व्यष्टि समष्टि तक विस्तार पाती है यह लघु से विराट तक की यात्रा है। क्षण से उत्पन्न विचार को भी अज्ञेय महत्वपूर्ण मानते है पर अज्ञेय की इस विचारधारा से काव्य जगत् का भला न हो सका। अज्ञेय ही ऐसे कवि है जो सन् उन्नीस सौ चालीस से लेकर सन् उन्नीस सौ सत्तासी तक भारतीय साहित्यकाश पर छाये रहे। अनेक प्रतिमान गढ़ने वाले अज्ञेय अनुभूति की सीमा व्यापक होने और विज्ञान को भी कवि की दृष्टि में समाहित करने वाला मानते है, इसलिए समीक्षा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के पक्षधर है।

सन्दर्भ

1- नई कविता और अस्तित्ववाद डॉ. रामविलास शर्मा पृष्ठ 78
2- पूर्वा अज्ञेय पृष्ठ 43
3- पूर्वा अज्ञेय पृष्ठ 57
4- हरी घास पर क्षणभर, पूर्वा अज्ञेय, पृष्ठ 250
5- बावरा अहेरी अज्ञेय, पृष्ठ 27
6- बावरा अहेरी अज्ञेय, पृष्ठ 16
7- इत्यलम् पूर्वा अज्ञेय, पृष्ठ 89
8- इन्द्र धनुश रौंदे हुये ये, अज्ञेय पृष्ठ 48
9- इन्द्र धनुश रौंदे हुये ये, अज्ञेय पृष्ठ 22
10- इन्द्र धनुश रौंदे हुये ये, अज्ञेय पृष्ठ 51
11- अरी ओ करूणा प्रभामय, अज्ञेय पृष्ठ 54
12- हरीघास पर क्षण भर, अज्ञेय पृष्ठ 242
13- इत्यलम्, पूर्वा, अज्ञेय पृष्ठ 176
14- हरी घास पर क्षण भर, पूर्वा, अज्ञेय पृष्ठ 220
15- हरी घास पर क्षण भर, पूर्वा, अज्ञेय पृष्ठ 225
16- पूर्वा, अज्ञेय पृष्ठ 220
17- कविता के नये प्रतिमान, डॉ. नामवर सिंह, पृष्ठ 80
18- प्रथम तार सप्तक भूमिका अज्ञेय, पृष्ठ 10
19- प्रथम तार सप्तक भूमिका अज्ञेय, पृष्ठ 10